अबकी बार 26 जनवरी

चन्द्र प्रकाश, फरीदाबाद

गणतंत्र दिवस की झांकियों में
कला, संस्कृति, विज्ञान
सैन्य प्रदर्शन को
सलामी नहीं दी जाएगी
अबकी बार

सुन लो सियासी जुगनुओ.....
धरती पुत्र का सम्मान होगा
और गौरवगान होगा राजपथ–
खेतों की पगडंडी को
नमन करेगा
अबकी बार

आंदोलन के शहीदों को
सलामी दी जाएगी सर्वप्रथम
उनकी चिता की
राख मिलाकर
राजपथ पर
रंगोली सजाई जाएगी नरमुंड–
गले में धारण किए
तमिल भाइयों को सलामी
दी जाएगी
अबकी बार

एक झांकी में
लोकतंत्र के जल्लाद
किसान को
फांसी पर लटकाते हुए
नजर आएंगे
अबकी बार

तुम–नजर मत चुराना
सलामी देना
सीना तान के कैसे–
वह आंधी, तुफान,बरसात
कड़कती ठंड में
खुले आसमान के नीचे
ललकारता है
भूख के दावानल को
सीमा पर डटे
जवान की भांति
देखना
अबकी बार

और सलामी देने का
सासह जुटाना
आंदोलन में–
चूल्हे पर रोटी
सेंकती महिलाएं मंच पर
दहाड़ती महिलाएं
ट्रैक्टर दौड़ाती महिलाएं
नजर आएंगी
अबकी बार

अभिभूत कर देगा
मातृशक्ति का
अद्भुत नजारा
अबकी बार

टैंक, तोप,मिसाइलों का
प्रदर्शन नहीं होगा
ट्रैक्टर पर सवार किसान करेंगे
अपनी शक्ति का प्रदर्शन
पग बांधे सिक्ख
पगड़ी के संग हिंदु
तो कहीं–
टोपी लगाए मुस्लिम किसान
असंख्य टैक्टरों पर सवार हो
तिरंगा फहराएंगे
अबकी बार

राजपथ पर
गणतंत्र दिवस सार्थक होगा
अबकी बार

श्रम

गुडईयर यूनियन के चुनावों की व्यवस्था ऐसे स्थापित हुई

सतीश कुमार

मुझसे पहले गुडईयर एम्पलाइज यूनियन के पदाधिकारियों को चुनने की कोई व्यवस्था नहीं होती थी। मात्र कोई 100-200 श्रमिक पथवारी मन्दिर पर एकत्र होकर हल्ले-गुल्ले के बीच कुछ लोगों को पदाधिकारी चुन लेते थे। इस तरह के चुनाव में बाहुबल अधिक काम आता था जिसकी बदौलत बहुमत की आवाज़ को दबाना कोई मुश्किल नहीं होता था। यद्यपि मेरे द्वारा गठित यूनियन का चुनाव भी इसी पद्धति से हुआ था, लेकिन मेरे पास बहुमत के साथ-साथ बाहुबल भी पर्याप्त था, लिहाज़ा मैं नई यूनियन कार्यकारिणी गठित करने में कामयाब रहा। लेकिन मन में यह बात तो बैठी रही कि यह प्रक्रिया गलत और भीड़तंत्र पर आधारित है। इसे बदला जाना चाहिये।

इसी समझ के चलते मैंने विधिवत मतदान के जरिये चुनाव कराने की व्यवस्था बनाई। इस व्यवस्था में यूनियन प्रधान व महासचिव को चुनने के लिये प्लांट के सभी श्रमिक मतदान करेंगे और कार्यकारिणी के शेष 13-14 सदस्यों का चुनाव उनके विभागीय श्रमिक चुनेंगे। विभागों में श्रमिकों की संख्या 150 से 200 तक तय की गयी। प्रत्येक श्रमिक एक वोट प्रधान के लिये, एक वोट महासचिव तथा तीसरा वोट अपने विभागीय प्रतिनिधि के लिये देगा।

प्रधान व महासचिव का चुनाव सीधे श्रमिकों द्वारा इसलिये रखा गया था कि दोनों की जिम्मेदारी व जवाबदेही बराबर की हो और कोई एक ज़्यादा हावी न हो सके। यद्यपि किसी नई शुरू होने वाली व्यवस्था की भांति इस व्यवस्था में भी कुछ खामियां रह गयी थी जिनमें समय व जरूरतों के हिसाब से परिवर्तन किया जा सकता था। उपलब्ध जानकारी के अनुसार चुने हुए पदाधिकारियों का कार्यकाल एक साल से बढ़कर दो साल व कुछ समय बाद 3 साल कर दिया गया। चन्दे के लिये हमें वेतन दिवस पर गेट के बाहर खड़े होकर रसीदें काटनी पड़ती थी क्योंकि प्लांट के भीतर यह काम, मैनेजमेंट के अनुसार गैरकानूनी समझ जाता था। लेकिन ज्यों-ज्यों यूनियन एवं व्यवस्था परिपक्व होती चली गयी यह काम गैरकानूनी न रहा, बल्कि मैनेजमेंट स्वयं ही यह काम करके देने लगी, यानी कि श्रमिकों के वेतन से चन्दा काट कर यूनियन के खाते में देने लगी। जाहिर है इसके चंदे की दर एवं स्वीकृति का प्रस्ताव श्रमिकों द्वारा पास करके कम्पनी को दिया जाता है।

जब मैंने यूनियन का कार्यभार सम्भाला था तो पुरानी यूनियन से पूछा कि उनका दफ़्तर व पुराना रिकॉर्ड कहां है? कई दिन की जद्दो-जहद के बाद चावला कॉलोनी में स्थित एक कमरे की चाबी देते हुए मुझे वह दफ़्तर सौंपा गया। खोलने पर दफ़्तर की हालत बता रही थी कि इसे बरसों से नहीं तो कई महीनों से खोला ही नहीं गया था। उसका किराया भी अच्छा-खासा दिया जा रहा था। हमने तुरन्त उसे खाली कर, जो एक अलमारी वहां थी निकलवा कर किसी श्रमिक के घर रखवा दी और तुरंत कम्पनी गेट के निकट ही दफ़्तर का निर्माण कराया जिसमें मैं तो नियमित रूप से बैठता ही था, बाकी श्रमिक भी जब चाहें वहां आते- जाते रहते थे। समय-समय पर वहां मीटिंगों का सिलसिला चलता रहता था। कुल मिला कर यूनियन का एक जीवंत माहौल बना रहने लगा। यह दफ़्तर कम्पनी की सीमा से सटी एक बहुत पुरानी मज़दूरों की झुग्गी-बस्ती में था। सन् 1998 में चौटालों के राज में जब वह बस्ती अवैध बता कर ध्वस्त कर दी गयी तो दफ़्तर भी वहां से समाप्त हो गया। वैसे ध्वस्त होने से कई वर्ष पूर्व ही यूनियन ने अपना दफ़्तर कम्पनी के भीतर ही प्रबन्धन द्वारा दी गयी एक जगह में स्थापित कर लिया था।

70 दिन के तालाबंदी के बाद मार्च 1979 में फैक्ट्री चालू हुई थी और चन्द माह बाद यानी अगस्त में यूनियन की समयावधि समाप्त हुई तो गुप्त मतदान के माध्यम से विधिवत चुनाव हुए। इसमें 6 मतों से मैं पराजित हो गया। जाहिर है 70 दिन के तालाबंदी, मैनेजमेंट व पुरानी यूनियन की नाराजगी का नजला तो मुझ पर गिरना ही था। यद्यपि सभी जानते थे कि उस रात टूल डाउन कराने में न तो मेरा हाथ था और न ही मैं उसका समर्थक था लेकिन फिर भी मुझे न चाहते हुए वह जंग लड़नी पड़ी थी। इसे मेरे नेतृत्व करने की योग्यता एवं क्षमता में कमी मान कर श्रमिकों का बहुमत, बेशक वह बहुत हल्का सा था, मेरे विरुद्ध हो गया था। इस खेल में, मेरा कम्पनी से निष्कासित रहना भी मुझ पर भारी पड़ा, क्योंकि यदि मैं भी नौकरी पर रहता तो श्रमिकों के बीच और अधिक समय बिता कर अपना पक्ष ज़्यादा समझा सकता था।

खैर एक साल बाद यानी 1980 में फ़िर से अगस्त का महीना आया और मुझे प्रधान पद के लिये भारी मतों से चुना गया। यह कार्यकाल भी मेरे लिये बहुत महत्वपूर्ण था क्योंकि इस बार कम्पनी व श्रमिकों के बीच यूनियन के माध्यम से 3 वर्षीय समझौता होने वाला था। किसी भी यूनियन नेतृत्व के लिये यह समझौता जीवन-मरण के प्रश्न जैसा होता है। अब से पहले तक की परम्परा यह थी कि प्रबन्धन वार्तालाप के लिये यूनियन वालों को किसी होटल, शायद होली-डे-इन में ले जाती रही थी। उनके खान-पान आदि का पूरा पंच सितारा प्रबन्धन कम्पनी द्वारा किया जाता था। यूनियन पर यह शर्त भी लगाई जाती थी कि वे समझौता हो जाने से पूर्व इसे लीक नहीं करेंगे, यानी कि श्रमिकों को केवल तभी बताया जायेगा जब समझौते पर अन्तिम मुहर लग जाये।

मुझे यह परम्परा बहुत ही अटपटी लगी जबकि मेरी कार्यकारिणी के अनेकों सदस्य जो पुरानी परम्परा और कई हफ़्तों होटल की पंचतारा मौज-मस्ती को जानते थे, उस मस्ती का जायका लेने को मुंह धोये बैठे थे; मैंने उन सबको नाराज़ करते हुए निर्णय लिया कि समझौता वार्ता बाहर किसी होटल में न होकर फ़ैक्ट्री परिसर में ही होगी, लिहाज़ा गेट के निकट स्थित कम्पनी रेस्ट हाउस में बैठक का इन्तज़ाम किया गया। लंच के लिये फ़ैक्ट्री कैन्टीन में ही आते थे लेकिन देर से जब श्रमिकों का लंच टाइम पूरा हो चुका होता था ताकि श्रमिकों के साथ अवान्छित बहस-मुबाहसा न हो।

करीब चार सप्ताह चली वार्ता में जो कुछ भी लेन-देन तय हुआ मैंने अपनी नीति-अनुसार, उस पर मुहर लगाने से पहले तमाम श्रमिकों के सामने रख दिया। जबकि कम्पनी ऐसा नहीं चाहती थी और न ही ऐसी कोई परम्परा रही थी, यह सब पुरानी परम्पराओं से हट कर था। जाहिर है ऐसे में जितने मुंह उतनी बातें होने लगी। अनेकों सुझाव तथा बेतुकी मांगे भी सामने आई। कुछ सुझावों का समावेश किया गया तो बेतुकी मांग रखने वालों को बीते समय की 70 दिन वाली हड़ताल की याद दिलाई गयी। कुल मिला कर बड़े बहुमत ने हमारे समझौते को उस वक्त तक हुए तमाम समझौतों से बेहतर मान कर मुहर लगाने की स्वीकृति दे दी।

कार्यकारिणी के अनेक सदस्यों का अत्यधिक दबाव पड़ने पर मुझे अन्तिम एवं औपचारिक वार्ता के लिये बडखल स्थित ग्रे-फ़ाल्कन रेस्तरां में बैठक की अनुमति देनी पड़ी। बैठक क्या, दरअसल खाने-पीने का ही प्रोग्राम था। मुझे उस वक्त तक 'खाने-पीने' के असल मतलब का ज्ञान कम ही था। मुझे तब समझ आया जब कई लोग पी कर लुढकने लगे, कोई नींवू चूस रहा था तो कोई उल्टी करने बाथरूम जा रहा था। मेरे लिये यह नितांत दुखदायी था। साथ आये मैनेजर लोग बिना कुछ कहे व्यंगात्मक मुस्कराहट के साथ बहुत कुछ कह रहे थे और मैं अपने आप को अपराधी जैसी भूमिका में देख रहा था।

(सम्पादक मज़दूर मोर्चा)

शोषण की सोशल ट्रेनिंग

किसी को सती होने के लिए मजबूर नहीं किया जाता था ?

सोशल ट्रेनिंग समझते हैं ? परवरिश समझते हैं ? समाज समझते हैं ? शोषण की विचारधारा अकेला मनुष्य नहीं चला सकता।

गंदे दिमाग के कई स्वार्थी मनुष्य उसे मिल-जुलकर चलाते हैं।

दिमागी डकैती का काम भौतिक डकैती से ज्यादा योजनाबद्ध होता है।

दिमागी ठग कोई लूप होल नहीं छोड़ते ।

इससे पहले कि कोई आपका दिमाग चुरा ले और उसे अपने हित में प्रयोग कर ले, आप खुद उसका इस्तेमाल शुरू कर दें।

बिना विरोध जमीन पर घर बनना तो दूर चला भी नहीं जा सकता है।

मन की दुविधा से बचने के लिए तनाव से बचने के लिए हर गलत बात को सही नहीं मान लेना चाहिए।

मानसिक आजादी से बढ़कर संसार में कोई सुख नहीं है लेकिन उसकी कीमत चुकानी पड़ती है ।

- ज्योति देशमुख